International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 3; Issue 1; February 2017; Page No. 80-82

हंस की लंबी कहानियों में दलित–विमर्श के विविध आयाम

डॉ. संगीता गोगिया[1], डॉ. नन्दकिशोर मौर्य[2]

[1] प्राध्यापक, हिन्दी, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर, राजस्थान, भारत

[2] प्राध्यापक, हिन्दी, गौरीदेवी राजकीय महिला महाविद्यालय, अलवर, राजस्थान, भारत

सारांश

'हंस' में प्रकाशित लंबी कहानियां दलित–विमर्श के नये क्षितिजों का संकेत करती हैं। यहां यह कहने में संकोच नहीं है कि दलित–विमर्श के सारे प्रचलित विवादों को दरकिनार करते हुए 'हंस' में प्रकाशित ये लंबी कहानियां दलित–विमर्श की स्वस्थ छवि प्रस्तुत करती है, नये दलित उबार को सही अर्थों में हमारे सामने लाने की सार्थक पहल करती है, दलित और गैर दलित साहित्यकारों को दलित अस्मिता के प्रति सचेत और संवेदनशील बनाती है, स्वानुभूति और सहानुभूति के प्रश्न को ध्यान में रखते हुए भी जातीय वैमनस्य से दूर एक बेहतर समाज बनाने के लिए प्रेरित करती है।

समकालीन हिन्दी कहानी को 'दलित कहानी' ने समृद्ध किया है। उसके फलक को विस्तार देते हुए अधिक सामाजिक और प्रतिबद्ध बनाया है। शास्त्रीय जड़ता और कला की पच्चीकारी से मुक्त कर अधिक सजग और लोकतांत्रिक बनाया है। दलित लेखन प्रगतिशील और जनवादी लेखन की तरह कलावाद का विरोध करता है। दलित लेखक कलापक्ष को लेकर ज्यादा आग्रही नहीं होता वरन् विषयवस्तु या रचना के आशय के प्रति ज्यादा सावचेत रहता है।

कुल मिलाकर दलित कहानीकार पाठक से बड़ी आत्मीयता और सजगता की मांग करता है। पाठक की जरा सी चूक न केवल उसे कहानी के वास्तविक सौन्दर्य से दूर कर देती है वरन् उसके सौन्दर्य बोध को भी कुण्ठित और विकृत कर देती है। इस कसौटी पर यदि इन कहानियों को कसा जाए तो निसंदेह हमें दलित–जीवन से सरोकार रखने वाली ये कहानियां एक नई दृष्टि प्रदान करेंगी।

मूल शब्दः हंस, पत्रिका, दलित, रचना, कहानी, साहित्य, समकालीनकहानी, रचना–प्रक्रिया, सजगता, वस्तुवादी चिन्तन, सृजन, दृष्टिकोण, विमर्श

प्रस्तावना

'हंस में प्रकाशित लंबी कहानियां दलित–विमर्श के नये क्षितिजों का संकेत करती हैं। यहां यह कहने में संकोच नहीं है कि दलित–विमर्श के सारे प्रचलित विवादों को दरकिनार करते हुए 'हंस' में प्रकाशित ये लंबी कहानियां दलित–विमर्श की स्वस्थ छवि प्रस्तुत करती है, नये दलित उबार को सही अर्थों में हमारे सामने लाने की सार्थक पहल करती है, दलित और गैर दलित साहित्यकारों को दलित अस्मिता के प्रति सचेत और संवेदनशील बनाती है, स्वानुभूति और सहानुभूति के प्रश्न को ध्यान में रखते हुए भी जातीय वैमनस्य से दूर एक बेहतर समाज बनाने के लिए प्रेरित करती है।

'हंस' में प्रकाशित ये लंबी कहानियां व्यापक सामाजिक सरोकारों से लबरेज हैं, इनमें जीवन की जटिलताएं, खुरदरापन, खौफनाक बेचैनियां, बेईमानियां, घायल कर देने वाली परिस्थितियां, घृणा और काहिली से भरा माहौल, सब कुछ है जो पाठक के सामने एक भरीपूरी दुनिया रचता है। कभी वह उसे टकराने को विवश करता है, कभी गुमसुम बैठ जाने को, कभी बौखलाने को विवश करता है तो कभी चक्कर घिन्नी की तरह सिर धुनने को। कुल मिला कर कहानीकार पाठक से बड़ी आत्मीयता और सजगता की मांग करता है। पाठक की जरा सी चूक न केवल उसे कहानी के वास्तविक सौन्दर्य से दूर कर देती है वरन् उसके सौन्दर्य बोध को भी कुण्ठित और विकृत कर देती है। इस कसौटी पर यदि इन कहानियों को कसा जाए तो निसंदेह हमें दलित–जीवन से सरोकार रखने वाली ये कहानियां एक नई दृष्टि प्रदान करेंगी।

'कब आयेगा तीसरा हार्ट अटैक' सुबोध कुमार श्रीवास्तव की लंबी कहानी है जो सामाजिक व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था और राजनीति पर फंतासी के माध्यम से व्यंग्यात्मक प्रहार करती है। कहानी का दलित नायक अपने बचपन की स्मृतियों में इस कदर गुम हो जाता है कि कहानी संस्मरणात्मक हो जाती है पूरी कहानी में एक सतत प्रवाह है जो कहानी को सरस बनाए रखता है। नायक अपने बचपन के मित्रों के साथ खेल–खेल में ही वर्ण व्यवस्था का एक ऐसा अविश्वसनीय वृतांत सुनता है जो युवावस्था तक उसका पीछा नहीं छोड़ता। उसका मित्र झगडू उसे बताता है कि यहां एक भूत रहता है जो सुन्दर चुडैल से प्रेम करता है, पर दोनों शादी नहीं कर सकते क्योंकि चुडैल उच्च कुलोत्पन्न है। वास्तव में यह भूत–चुड़ैल कोई और नहीं स्वयं झगडू और नीना है। नीना सनातनी ब्राह्मण पिता की संतान है और झगडू नीची जाति का युवक। "झगडू ने एक बार भूत को देखा था व वह उससे डरता भी नहीं था। वह भूत को तंबाकू खिलाता था और उसने उससे पक्की दोस्ती गांठ ली थी। एक दिन झगडू ने मुझे बताया था कि स्कूल की पुलिया के पास लगे नीम के पेड़ पर एक सुन्दर चड़ैल भी रहती है। उसने एक गोपनीय जानकारी भी दी थी कि भूत और चुड़ैल दोनों एक–दूसरे से प्रेम करते हैं और शादी करना चाहते हैं परंतु उसके माता–पिता इस संबंध के लिए राजी नहीं हैं। क्योंकि चुड़ैल बाह्मण जाति की थी और भूत हरिजन था....."

इस कहानी में घटनाएं अप्रत्याशित रूप से घटती हैं पर स्वाभाविक लगती हैं। इन घटनाओं का अंत होता है झगडू की हत्या से कहानीकार ने दिखाया है कि भ्रष्ट राजनीति, क्रूर वर्ण व्यवस्था और छुआछूत के चलते एक संघर्षशील, सजग और ईमानदार युवक झगडू व्यवस्था की भ्रष्ट कारगुजारियों के खिलाफ बोलने पर नक्सलवादी करार देकर मार दिया जाता है।

इस कहानी में सुबोध कुमार ने जातिवाद, वर्ण व्यवस्था और व्यवस्था के प्रति विद्रोह व्यक्त करते हुए पाठक को गहरी बेचैनी के बीच 'तीसरे हार्ट अटैक' के इंतजार में छोड़ दिया है। कहानी के अंत में कथा वाचक का यह कथन पूरी व्यवस्था पर प्रहार करता है– "मैं सोच रहा था कि मेरे बचपन का पथ प्रदर्शक, मेरा यार अंत तक भूतों से लड़ता रहा। पीपल के भूत ने तो उसका कुछ नहीं बिगाड़ा था, पर इस व्यवस्था के भूतों ने उसे मार डाला" झगडू की मौत का पूरा किस्सा सुन लेने के बाद भी मुझे तीसरा हार्ट अटैक नहीं आया" वस्तुतः यह बेचैनी ही उसमें विद्रोह का अंकुरण कर सकती है। संघर्षशील दलित युवक झगडू

की मौत (हत्या) यहां कई प्रश्न छोड़ कर जाती है जो एक तरफ भारतीय राजनीति के अपराधीकरण की ओर संकेत करती है तो दूसरी ओर नक्सलवादी आंदोलन के विचलन की ओर भी संकेत करती है।

अवधेश प्रीत की कहानी 'तालीम' जो देखने में शिक्षा जगत में व्याप्त भ्रष्टाचार को व्यक्त करती जान पड़ती है पर वास्तव में जैसे–जैसे कहानी आगे बढ़ती है कहानी का परिदृश्य व्यापक होता जाता है। दलितों को दबाने और प्रताड़ित करने के सवर्ण मानसिकता के सारे षड़यंत्रों को बेनकाब करती यह कहानी आज के सामाजिक यथार्थ को गहराई से व्यक्त करती है। इस कहानी में एक बार पुनः वर्ग भेद, जातिवाद, छुआछूत, शोषण और सामाजिक असमानता को बढ़ावा देने वाले तत्त्वों का नकाब नोचा गया है। कहानी शिक्षा जगत की आम विसंगतियों को छेदते हुए समाज के वर्ग और वर्ग संघर्ष तक पहुंच कर अपनी सार्थकता सिद्ध करती है।

नव–नियुक्त अध्यापक रामबाबू एक संवेदनशील और जागरूक व्यक्ति है। वह हरिजनों और गरीब मजदूरों के बच्चों को स्कूल में जाकर पढ़ाना चाहता है। वह फेंकन को स्कूल में लाकर उससे आल्हा गवाता है जो एक विशेष प्रयोजन है कहानीकार का पर हरिजनों और मजदूरों के बच्चों को पढ़ाने का उसका प्रयास स्कूल के हैडमास्टर, स्कूल के अध्यापकों, गांव के सामाजिक ढांचे को और वहां के प्रभावशाली लोगों को यह बर्दाश्त नहीं। इसलिए वे अध्यापक रामबाबू की शिकायत करते हैं जिसकी जांच के लिए इलाके के दलित विधायक दीनानाथ पासवान आते हैं।

यहां अवधेश प्रीत ने बड़े स्वाभाविक ढंग से विधायक पासवान के चरित्र के दब्बूपन और दोहरेपन का खुलासा किया है। यह विधायक रामबाबू का सहयोग समर्थन करना छोड़कर उन लोगों की हाजिरी बजाता है जो दलितों को शिक्षा के अधिकार से वंचित रखना चाहते हैं। दलितों की शिक्षा की हिमायत का दावा करने वाला विधायक पासवान रामबाबू का ही तबादला करने की सिफारिश करता है। यहां अध्यापक रामबाबू का चरित्र और संघर्ष दोनों ही सामाजिक दृष्टि से बड़े बन जाते हैं क्योंकि तबादले के बाद वे नौकरी छोड़कर वहीं दलितों और मजदूरों के बच्चों को हरिजन टोले में पढ़ाने का महत्त्वपूर्ण फैसला करता है। कथाकार का कथन है– ". लेकिन रामबाबू को लगा कि वह आखिर भागकर जायेगा भी कहां? कहां–कहां भागेगा? और किस–किस से भागेगा? फिर.... फिर..... यह मोर्चा जो उसने स्वयं खोला है; यह लड़ाई जो उसने स्वयं छेड़ी है, उसे यूं अधूरी छोड़ देना उसकी विवशता क्यों है? क्या एक नौकरी ही उसका अभिष्ट है?"ङ यहां कहानीकार कहानी को दलित–विमर्श पर केन्द्रित करके भी व्यक्ति संघर्ष को व्यापक सामाजिक संघर्ष में बदलने में कामयाब होता है।

रामस्वरूप अणरबी की लंबी कहानी 'जोहड़ बस्ती' हृदय स्पर्शी, संवेदनापरक तथा मन को झकझोर देने वाली है। कहानी में दिखाया गया है कि दलित और पिछड़े लोग किस लाचारी और बेबसी में अपने जीवन को घसीटते हैं। सामाजिक यंत्रणा और ऋण के बोझ के नीचे दबा परिवार किस तरह से अपने प्रतिभाशाली पुत्र की प्रतिभा का दमन कर देता है। यह कहानी का संवेदनापूर्ण और यथार्थ परक परिदृश्य है। गांव से अलग कुछ पिछड़ों–दलितों की बस्ती है जहां शिक्षा का पूर्ण अभाव है, ऐसे में कुछ नवनियुक्त शिक्षिकाएं वहां आकर नामांकन करती हैं। दलित बालक 'बूटा' पढ़ना चाहता है और सरकार द्वारा प्राप्त सुविधा से अध्ययन करता है लेकिन आगे की पढ़ाई धनाभाव के कारण करने में असमर्थ है।

माता–पिता बूटा की पढ़ाई छुड़वाने को विवश हैं पर उसकी लगन देखकर पढ़ाई छुड़वाने का मन भी नहीं है। वह सोचता है– "जबरा और मुख्तियारो सारी रात सोचते रहे कि कैसे किया जाए। गाय दे दी जाए या बूटे को पाली लगा दिया जाए। बूटा उनके पास ही गहरी नींद में सो रहा था। जब भी बूटे को पाली में शामिल करने की बात छिड़ती तो दोनों जीव झुरते और उसके मुंह की तरफ हसरत भरी निगाहों से ताकने लगते। दोनों के कलेजे से एक टूक– सी निकल उठती। एक धुंआ–सा उनके अंदर से उठता और बूढ़े की आने वाली जिन्दगी में अंधकार छा गया नजर आता"4

आखिर में अपने मन को कड़ा करके अपनी गाय को गिरवी रख कर बूटा का बाप उसकी पढ़ाई के लिए ऋण लेता है और यही ऋण उनके दमन का कारण बन जाता है। ऋण का भार बढ़ता जाता है। वे अपनी गाय को बेच कर भी इस कर्ज के मर्ज से नहीं बच पाते हैं और अन्त में न केवल बूटा की पढ़ाई छुड़ा दी जाती है। बल्कि उसे जमीदार के घर मजदूर बना कर पाली लगा दिया जाता है। कहानीकार का कथन कि "जैसे–जैसे जमीदार का घर नजदीक आ रहा था पिता के कदम जहां तेज हो रहे थे वहीं बूटा के कदम धीरे हो रहे थे।"[5] वास्तव में हृदयस्पर्शी है।

वस्तुतः कहानी की मूल संवेदना है कि आज भी सरकार की अनदेखी और सुविधाओं के अभाव में 'बूटा' जैसे प्रतिभाशाली और आकांक्षी छात्रों के सपने गरीबी और घनाभव में टूटकर बिखर जाते हैं। ऋण की समस्या गरीब, पीड़ित और शोषित लोगों के बीच भयंकर रूप से विद्यमान है। जिससे निजात पाना आवश्यक है। वास्तव में एक दलित लड़के के स्वप्नों–आकांक्षाओं के दमन को कहानी पूर्ण संवेदना से प्रकट करती है। कहानी दिखाती है कि दलित जीवन की बेशुमार त्रासदियों में धनाभाव किस तरह कोढ़ में खाज का काम करता है।

50 ईस्वी के घटनाक्रम पर आधारित राहुल सांकृत्यायन की यह लंबी कहानी 'प्रभा' तत्कालीन समाज के मध्य स्थित जातीय दंश का जीवन्त चित्रण करती है। वर्ण व्यवस्था के कुचक्र में पलता प्रभा व अश्वघोष का प्यार न तो उस समय स्वीकार्य था और न ही आज स्वीकार किया जाता है। अश्वघोष व प्रभा की प्रथम मुलाकात एक तैराकी प्रतियोगिता में होती है जहां पर वे दोनों समान विद्यार्थी रहते हैं। यह मुलाकात उनके 'प्रेम' का प्रारम्भ है। तत्पश्चात् नाट्य मण्डली में उनका प्रेम परवान चढ़ता है।

लेकिन 'प्रभा' को एक अनजाना भय था जिसके कारण वह अश्वघोष से बात करती है। दरअसल अश्वघोष के पिता अपनी पगड़ी प्रभा के पैरों पर रखते हुये अश्वघोष को अपने प्रेम से मुक्त कर देने की याचना करते हैं। तब अश्वघोष को क्रोध आता है और ब्राह्मणवाद पर करारा व्यंग्य करता है– "मुझे ब्राह्मणों के पाखण्डों से अपार घृणा है, घृणा से सारा गात्र जलता है। एक ओर वह कहते हैं कि हम अपने वेद शास्त्र को मानते हैं। मैंने बड़े परिश्रम और श्रद्धा से उनकी सारी विधाएं पढ़ी। किंतु वह क्या मानते हैं, मुझे तो कुछ समझ में नहीं आता। शायद वह केवल अपने स्वार्थ को मानते हैं। जब किसी को उनके पुराने ऋषियों के वचनों को निकाल कर दिखलाया तो कहते हैं– इसका आजकल रिवाज नहीं है। रिवाज को ही मानो या ऋषि वाक्यों को ही यदि पुरानी वेद–मर्यादा को किसी ने तोड़ा, तभी न नया रिवाज चला?"[6]

कहानी में प्रभा अश्वघोष से वादा लेती है कि हम यदि अलग होते हैं तो तुम टूटोगे नहीं बल्कि सदैव आगे बढ़ोगे अश्वघोष अकेला हो जाता है और बौद्ध धर्म ग्रहण करके दर्शन का गहन अध्ययन करता है। 'प्रभा' को हृदय में रखकर प्रेम के उदात्त स्वरूप का दर्शन करवाता है। वस्तुतः कहानी जातिवाद, अपनी जाति को श्रेष्ठ मानकर किसी भी प्रकार का समझौता नहीं करने की जिद के आगे 'प्रेम' के दमन को व्यक्त करती है।

'पुनर्जन्म' नामक लंबी कहानी में शरण कुमार लिम्बाले ने सवर्ण मानसिकता से ग्रस्त एक प्रतिभाशाली युवक की मानसिकता को उघाड़ कर रख दिया है। कहानी का नायक एक सवर्ण युवक है

जो एक दूसरे प्रतिभाशाली दलित युवक मिलिन्द के साथ रूम पार्टनर के रूप में रहता है। कथा नायक उससे दुखी है और हमेशा कुढ़ता रहता है क्योंकि मिलिन्द का एक दोस्त है। रोहिदास जो गेस्ट के रूप में उनके रूम में रह रहा है। वे दोनों सदैव दलित उत्थान की बात करते हैं तथा राजनीतिक गतिविधियों में भी सक्रिय हैं। जाति को लेकर कुछ ज्यादा ही संवेदनशील होने के कारण कथा नायक प्रायः कुढ़ता रहता है।

तभी पांगरी गांव में एक घटना घटती है। दलितों को गांव में बंद कर दिया जाता है। दलितों के साथ होने वाले अत्याचार की खबर अखबारों में पढ़कर मिलिन्द और रोहिदास का खून खौल उठता है। वे दलित छात्रों को एकजुट करके उस गांव में जाकर उत्पात मचाते हैं। गांव में जो भी सवर्ण मिलता है उसे पीटा जाता है। इस घटना के कारण कथा नायक बुरी तरह डर गया। वह सोचता है कि दलितों के मन में सवर्णों के प्रति कितना जहर है। यहां पर नायक के मन का अन्तर्द्वन्द्व सामने आता है। और वह आवेश में आकर सड़क पर झाड़ू भी लगाने लग जाता है। एक दिन वह अपने ए.बी.वी.पी. कार्यकर्त्ता मित्र रवीन्द्र साने से मिलता है और दलित रूम पार्टनर से अलग रहने की इच्छा जाहिर करता है।

कहानी में वर्ण व्यवस्था, जातिवाद का भयावह रूप प्रदर्शित किया गया है। प्रत्येक वर्ग ने आज अपनी–अपनी सीमाएं तय कर ली हैं। वे उसी नजरिये से अपने मत देते हैं। राष्ट्रीयता को ध्यान में न रखकर अपने समाज को महत्व देते हैं। यही मानसिकता सवर्ण तथा दलित प्रदर्शित करते हैं। इसी कशमकश के बीच कथा नायक मराठे हवलदार के पास जाता है। और दलित रूम पार्टनर से अलग रहने की इच्छा जाहिर करता है तो मराठे हवलदार समझाता है कि तुम पलायनवादी मत बनों अपनी सवर्ण मानसिकता के बंधन से निकल कर उन्मुक्त होकर समाज को देखो और इन दलितों से नफरत की बजाय कुछ सीखो। मराठे का एक–एक स्वर उसे वेद वाक्य लगता है और वह वापस होस्टल की तरफ चल देता है। वह अपना जनेऊ तोड़कर एक नई सोच और नई दुनिया का स्वप्न मन में लिए अपना पुनर्जन्म महसूस करता है। कहानी में शरण कुमार लिम्बाले ने स्पष्ट किया है कि दलित चेतना से बेवजह कुण्ठित होने की जरूरत नहीं है। और सामाजिक चेतनाओं की तरह यह भी दलितों के अस्तित्त्व की चेतना है। दलित शब्द मूलतः अस्मिताबोधक शब्द है अतः इससे घृणा न करके इसका स्वागत करें।

समकालीन हिन्दी कहानी को 'दलित कहानी' ने समृद्ध किया है। उसके फलक को विस्तार देते हुए अधिक सामाजिक और प्रतिबद्ध बनाया है। शास्त्रीय जड़ता और कला की पच्चीकारी से मुक्त कर अधिक सजग और लोकतांत्रिक बनाया है। दलित लेखन प्रगतिशील और जनवादी लेखन की तरह कलावाद का विरोध करता है। दलित लेखक कलापक्ष को लेकर ज्यादा आग्रही नहीं होता वरन् विषयवस्तु या रचना के आशय के प्रति ज्यादा सावचेत रहता है। कलावाद साहित्य और कलाओं के क्षेत्र में अभिजन, कुलीन और सवर्ण मानसिकता की ईज़ाद है इसलिए भी दलित लेखक कलावाद का विरोध करते हैं। कलावाद और विचारधारा के बीच एक गहरा संबंध इस आधार पर है कि 'विचारविहीन रचना का कलावादी होना अवश्यमभावी है।' ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इस संबंध में कहा है– "किसी भी रचनाकार के पास कोई विचार नहीं है तो वह कलावादी ही कहा जायेगा और उसकी रचनाओं में सामाजिकता और उससे जुड़े मुद्दों का आभाव दिखाई देगा। 7

संदर्भ सूचि

1. सुबोध कुमार श्रीवास्तवः कहानी–कब आयेगा तीसरा हार्ट अटैक, हंस–जून 1992; पृष्ठ– 62.
2. अवधेश प्रीतः कहानी–तालीम, हंस–जुलाई 1992; पृष्ठ 70.
3. रामस्वरूपः कहानी–जोहड़ बस्ती, हंस– अक्टूबर 1991 पृष्ठ– 68.
4. रामस्वरूपः कहानी–जोहड़ बस्ती, हंस–अक्टूबर 1991; पृष्ठ 71.
5. रामस्वरूपः कहानी–जोहड़ बस्ती, हंस–अक्टूबर 1991; पृष्ठ 73.
6. राहुल सांकृत्यायनः कहानी–प्रभा, हंस–अगस्त 1993; पृष्ठ– 78.
7. अन्यथाः विशेषांक 'कहानी का अंतः सदन', सं. कृष्ण किशोर, अंक–13; पृष्ठ 144.